मेहनतकशों का पैग़ाम — मेहनतकशों के नाम

मज़दूर मोर्चा

पाक्षिक

Email : mazdoormorcha@yahoo.co.in
www.mazdoormorcha.com

Postal Reg. No. L/H.R/FBD/463-06 /R.N.I. No. 66400/97

खस्ताहाल प्रशासन ने जाम किया ट्रैफिक
भविष्यनिधि में कंसेलटेंसी के नाम पर दलाली — 3

कुर्सी चाहिए, कांग्रेसी बनो!
यूक्रेन में तख्तापलट गैस और तेल के... — 4

खाद्य सुरक्षा बिल; एक अलग नजरिये से
शमशेर की कविता 'अमन का राग' — 6

विज्ञापनों की नाव से चुनावी वैतरणी पार ...
अरबपतियों के मुकाबले 'आप' ने उतारा डागर — 8

वर्ष 27 अंक 9 फरीदाबाद, शनिवार, 16-31 मार्च 2014 फोन : - 9999595632 ₹ 2

मोदी तेरी हवा कहां है ?

पिटे मोहरों, पासवान, राज ठाकरे और 'बैकवर्ड कार्ड' व 'मुसलमानों से माफ़ी' का सहारा

मोदी के पास दूसरों की लिखी तुकबंदियां पढ़ने के अलावा और कुछ बचा नहीं दिखता; केजरीवाल ने ठीक ही कहा कि मोदी की हवा 'देखने' के लिये गुजरात ही जाना पड़ेगा। 'हवा' में सिर्फ जनता का गुस्सा है-

दिल्ली मज़दूर मोर्चा ब्यूरो

कुछ दिनों से केजरीवाल यह सवाल उठा रहे हैं कि मोदी की देशव्यापी रैलियों पर होने वाला सैंकड़ों करोड़ का खर्च कौन उठा रहा है ? आज का असल सवाल तो यह भी बनता है कि इतने पैसे पानी में बहाकर मोदी को हासिल क्या होने जा रहा है ?

अभी चुनाव होने में 2 महिने से ज़्यादा का समय है और लोग़ों के लिये मोदी के भाषण पूरी तरह बेस्वाद हो चले हैं। मोदी का 'नयापन' किसी के लिये आकर्षण नहीं रहा और न ही उनके पास कहने को नई बातें या नये मुद्दे शेष बचे हैं जिनसे वे अपने श्रोताओं को बांध सकें। ले-देकर उनके समथर्कों की भीड़ में उसी पुराने समीकरण की झलक बच रही है जो भाजपा द्वारा उन्हें प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित करने के समय एकबारगी नज़र आई थी। अंतत: भाजपा का कट्टर वोट बैंक और निजी उद्यमियों/पेशेवरों की मोटे मुनाफ़े व ललचाते पे-पैकेजों के प्रति लालायित जमात ही मोदी के पीछे रह गयी है। और, साथ रह गये हैं उनके लिये भाषण लिखने वाले चुटकलेबाज़ जिनकी नहले पर दहला मार्का 'वन-लाइनर' भी अब बासी हो चले हैं।

2 मार्च की लखनऊ में आयोजित मोदी की रैली में एक ऐसा नज़ारा देखने को मिला जो भारतीय सत्ता परिदृष्य के सामान्य प्रेक्षक को भी आश्चर्यचकित करनेवाला कहा जाना चाहिए। मंच पर बतौर बैकड्राप केवल अटल बिहारी वाजपेयी की तस्वीर थी। मोदी की अपनी तस्वीर जो उनके हर चुनावी मंच पर सबसे प्रमुख होती है, वह तक नदारद थी। मोदी की ओढी हुई विनम्रता का आलम यह था कि वे वाजपेयी की तारीफ़ में बार-बार कसीदे पढ रहे थे। जबकि सभी जानते हैं कि बतौर प्रधानमंत्री बाजपेयी ने मोदी को अपने से कोसों दूर रखा था। मोदी ने भी तब वाजपेयी को अपमानित करने का शायद ही कोई मौका गंवाया हो।

खैर यह तो हुई पार्टी की अन्दरूनी उठा-पटक। सवाल यह है कि वे मुद्दे कहां

गये जिनके दम पर मोदी की हवा बनने की बात की जा रही थी। हिन्दुस्तान को 'जवान' कहनेवाले मोदी यह नहीं बता पाते कि देश के जवानों के भविष्य के लिये वे क्या कर पायेंगे। वे लाख माफ़ी मांग लें पर अल्पसंख्कों का उनमें भरोसा न आया है न आयेगा। अहमदाबाद के नरोदा पाटिया के मुसलमान एक स्वर से मोदी के 2002 के आपराधिक कृत्यों के लिये दंड की मांग करते आ रहे हैं। दलित समर्थन की ज़मीन तलाशने के लिये मोदी को पासवान जैसे पिटे हुए मोहरे की शरण में जाना पड़ा है। उधर मुंबई में उनका दूत नितिन गडकरी मनसे के राजठाकरे को बहलाने में लगा है। क्या राज ठाकरे के बिहारी विरोधी करनामे व भावनायें याद नहीं ?

बिहार की मुज़फ़्फरपुर की रैली में मोदी ने ब्राह्मण/बनियों की भाजपा में स्वयं को पिछड़ी जाति का प्रतिनिधि घोषित कर दिया। यानी वे अब बेपेंदी का लोटा बनने को भी तैयार हैं। **शेष पेज 2 पर**

बेरोज़गारों को एक और आरक्षण का झुनझुना

शासकों के पास युवाओं को देने के लिये रोज़गार नदारद हैं। इसकी भरपाई वे समय-समय पर आरक्षण का झुनझुना बजा कर करते रहते हैं। इस क्रम में, मुख्यत: चुनावी फ़ायदा उठाने के उद्देश्य से, मनमोहन सिंह की कांग्रेसी सरकार ने जाते-जाते केन्द्रीय नौकरियों में उत्तर भारत के 9 राज्यों के जाट समुदाय को 'अन्य पिछड़ा वर्ग' में शामिल कर लिया है।

इससे पहले भी आंखों में धूल झोंकनेवाली ऐसी ही एक कारगुज़ारी इसी सरकार ने राहुल गांधी की पहल पर दिखाई। इसके द्वारा संघ लोकसेवा आयोग की परीक्षाओं में बैठने वाले अभ्यर्थियों को दो अतिरिक्त अवसर इस आधार पर दिये गये कि आयोग ने परीक्षा लेने की पद्धति में कुछ बदलाव किये हैं। अभ्यर्थियों को तद्नुसार उम्र में दो वर्ष की छुट भी दी गयी है। इस तरह नये व पुराने अभ्यार्थियों के बीच प्रतिस्पर्धा को बढा कर राजनीतिकों ने किनारा कर लिया है।

'आरक्षण' की कवायद से भी राजनीतिकों का अपना उल्लू ही सिद्ध होता है। देश के करोड़ों युवा बेरोज़गारों, जिनमें आरक्षित समुदायों के बेरोज़गार भी शामिल हैं, को इससे केवल दिलासा या निराशा ही हाथ लगती है। सभी जानते हैं कि उच्चतम न्यायालय के फ़ैसलों के अन्तर्गत 50 प्रतिशत से अधिक आरक्षण नहीं दिया जा सकता। लिहाज़ा, जाट समुदाय को आरक्षित बनाने का मतलब है कि उस श्रेणी में पहले से आरक्षित चले आ रहे समुदायों के अभ्यार्थियों के अवसरों को कम करना। और क्योंकि जाट समुदाय में भी एक समान आरक्षण लागू किया गया है, लिहाज़ा जो वास्तविकता में शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए हैं वे अब भी पिछड़े ही रह जायेंगे।

आरक्षणों की घोषणाये करके इस देश का राजनीतिक तबका स्वयं को इस जवाबदेही से मुक्त कर लेता है कि वह सभी के लिये रोज़गारपरक व्यवस्था लाने में असमर्थ क्यों है ? क्यों बैंकों के खज़ाने केवल उन कार्पोरेटों केलिये खुले हुए हैं जो किसानों की ज़मीनें हथिया कर उन्हें पारम्परिक कृषि कार्य से वंचित कर देते हैं ?

क्यों विकास के नाम पर स्थानीय लोग़ों को विस्थापित करने के पहले उन्हें नये रोज़गारों के लिये तैयार नहीं किया जाता ? क्यों, पारम्परिक रूप से रोज़गार देने वाले सरकारी क्षेत्रों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, यातायात, खनिज, वन, आवास, शहरीकरण, पैट्रोलियम इत्यादि से सरकारें अपने हाथ खींचकर उन्हें निजी लुटेरों के हवाले करती जा रही हैं ?

इन सवालों के जवाब न राहुल गांधियों के पास हैं और न नरेन्द्र मोदियों के पास। चुनावी मैदान में ताल ठोंकते किसी अन्य खिलाड़ी के पास भी इनके जवाब नहीं हैं। दरअसल, यदि राजनीतिक तबका इन सवालों के जवाब ढूंढने निकलेगा तो उसे इस मुद्दे के बुनियादी सच से साक्षात्कार करना पड़ेगा। बुनियादी सच यह है कि इस तमाम प्राणी-जगत में मनुष्य ही एकमात्र प्राणी है जो बेरोज़गारी का दंश सहता है। कोई अन्या प्राणी-शेर, चिड़िया, हिरण, गधा, गाय, इत्यादि। कभी बेरोज़गार नहीं होते। मनुष्य की बनाई पूंजीवादी व्यवस्था में ही यह निहित है कि उसकी बेरोज़गारी का चक्र कभी समाप्त नहीं होगा। जब तक कि व्यवस्था ही न बदल जाय।

क्या हर पैदा होनेवाला बच्चा अपने साथ 5-7 रोज़गार लेकर नहीं आता ? आखिर उसे दुनिया में परिपक्व होने के क्रम में शिक्षक, चिकित्सक, खेल प्रशिक्षक, विज्ञान एवं कलाओं से परिचय करानेवाले, आत्म-रक्षा एवं तकनीकी कुशलता के गुर सिखानेवाले, संगीत की दुनिया से मिलानेवाले, सामाजिक एवं नागरिककर्मी बनानेवाले, न जाने ऐसे कितने ही रोज़गारों में सिद्धहस्त व्यक्तियों की जरूरत रहती है। फ़िर ये रोज़गार गायब कहां हो जाते हैं ?

एक अन्य पहलू यह भी है कि ज्यों-ज्यों आरक्षण बढते गये हैं, त्यों-त्यों सरकारी क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर घटते गये हैं। केवल पुलिस व अर्धसैनिक बलों के महकमे ही ऐसे हैं जिनमें भर्तियां क्रमश: बढ़ती गयी हैं। कानून-व्यवस्था बिगड़ने के पीछे मुख्य वजह बढती बेरोज़गारी ही है। बेरोज़गार युवा को गैरकानूनी धंधों में पड़ने में देर नहीं लगती। ऐसे में कानून-व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर राजनीतिकों के लिये पुलिस बलों में वृद्धि ही एकमात्र चारा रह जाता है। दूसरे शब्दों में समाज के लिए उत्पादक क्षेत्रों की अवहेलना करके अनुत्पादक क्षेत्रों को बढावा देना ही विकल्प बन गया है। जाट समुदाय के बहुसंख्यक वंचित भी आरक्षण के चक्रव्यूह में फंसकर उन्हीं पड़ावों से गुजरेंगे जिनसे अन्य आरक्षित समुदायों के वंचितों को गुजरना पड़ रहा है। सबसे पहले यह उमंग आयेगी कि हमें 'कुछ' मिल गया है। फ़िर यह प्रतीक्षा चलेगी कि वह 'कुछ' कभी न कभी मिलेगा ही। अन्त में यह समझ आयेगी कि आरक्षण की मलाई तो उन्हीं के लिये हैं जो इसे हजम करने का माद्दा पहले से ही रखते हैं। न जाने वह समय कब आयेगा जब इस देश का युवा आरक्षण के झुनझुने से सन्तोष नहीं करेगा, बल्कि रोज़गार के अधिकार पर अड़ेगा।

-आनंद कुमार

ख़बर दार

टी. वी. चैनलों पर भ्रष्टाचार का मछली बाज़ार

हर शाम टी.वी. के पर्दों पर खबरी चैनलों द्वारा मछली बाज़ार लगाये जाते हैं। यहां लच्छेदार भाषा में मीडिया का कोई अनुभवी-घाघ सम्पादक तरह-तरह के मछली फ़रोशों को इकट्ठा करता है जो एक दूसरे से बढ-चढकर अपने-अपने माल की बोली बुलंद करते हैं। चुनावी समय में तो नज़ारा और भी दिलचस्प हो जाता है। चार-पांच राजनीतिक पार्टियों के सिपहसालार बैठा दो और वो तकरारें देखने को मिलेंगी कि गली के नल पर पानी भरने वालों की जमात भी शर्मा जाय।

इधर जब से केजरीवाल की 'आप' पार्टी ने दिल्ली में स्टिंग आपरेशन का आह्वान देकर भ्रष्टाचार से लड़ते दिखने का रास्ता खोला, टी.वी. चैनलों में भी होड़ लगी है कि कौन स्वयं को ज़्यादा स्टिंगबाज़ सिद्ध कर पाता है। जाहिर है, क्योंकि चुनावी माहौल में भ्रष्टाचार का मुद्दा गर्म है, इन स्टिंग आपरेशनों को चैनल की टी आर पी बढ़ाने में लाभदायक माना जाता है। ये तमाम स्टिंग-आपरेशन सरकारी दफ़्तरों पर

स्टिंग चैनल घंटों दिखाते रहते हैं कि कैसे कोई बाबू या कनिष्ठ अफ़सर कैमरे पर घूस के पैसे गिन रहा है। यह ठीक है कि उसे न पकड़े जाने की फ़िक्र होती है और न ही भ्रष्टाचार करने में शर्म। पर चैनलों की पकड़ में न तो वरिष्ठ अधिकारी आ पाते हैं और न ही न्याय व्यवस्था एवं कार्पोरेट व्यवस्था के 'विशिष्ट' नुमायदे। स्टिंग के बाद यह चैनल अपनी खबर के 'असर' का ढिंढोरा भी काफ़ी उछल-उछल कर पीटते हैं।

ही किये जाते हैं। मानो कार्पोरेट सेक्टर व निजी धंधों में तो भ्रष्टाचार हो ही नहीं सकता।

सरकारी दफ़्तरों/गतिविधियों पर स्टिंग करना इसलिये आसान भी है क्योंकि हर दफ़्तर में लगभग हर कर्मचारी रिश्वत के दस्तूर से पारम्परिक रूप से बंधा होता ही है। विशेषकर, उन सरकारी दफ़्तरों में जहां लोग़ों को सरकार से बुनियादी जरूरतें पाने की लम्बी कतार में खड़ा होना पड़ता है या मिलीभगत से टैक्स चोरी की जा सकती है, रिश्वत का खेल पूरी तरह खुले रूप में चलता है। दिल्ली में ऐसे महकमों को आसानी से गिनाया जा सकता है-ट्रांसपोर्ट, जलबोर्ड, सेल्सटैक्स, राशन विभाग, पुलिस, नगर निगम डी डी ए, अस्पताल, स्कूल, पासपोर्ट तहसील, श्रम विभाग, अदालत, आयकर इत्यादि।

स्टिंग चैनल घंटों दिखाते रहते हैं कि कैसे कोई बाबू या कनिष्ठ अफ़सर कैमरे पर घूस के पैसे गिन रहा है। यह ठीक है कि उसे न पकड़े जाने की फ़िक्र होती है और न ही भ्रष्टाचार करने में शर्म। पर चैनलों की पकड़ में न तो वरिष्ठ अधिकारी आ पाते हैं और न ही न्याय व्यवस्था एवं कार्पोरेट व्यवस्था के 'विशिष्ट' नुमायंदे। स्टिंग के बाद यह चैनल अपनी खबर के 'असर' का ढिंढोरा भी काफ़ी उछल-उछल कर पीटते हैं।

शेष पेज 2 पर